मौलिक अधिकार

- मौलिक अधिकार से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विद्वानों का कथन

क्रम सं.	विद्वान	कथन
1.	न्यायमूर्ती गजेन्द्र गडकरी	भारतीय संविधान द्वारा लाई गयी लोकतांत्रिक पद्धति की ठोस नीव मौलिक अधिकार ही है।
2.	एम.वी.पायली	"मूल अधिकार एक ही समय पर शासकीय शक्ति से व्यक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और शासकीय शक्ति द्वारा व्यक्तिक स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। इस प्रकार मूल अधिकार व्यक्तिक और राज्य के बीच सामंजस्य स्थापित कर राष्ट्रिय एकता और शक्ति में वृद्धि करते हैं।"
3.	न्यायमूर्ति श्री के सुब्बाराव	"मौलिक अधिकारों के महत्त्व पारस्पर प्राकृतिक अधिकार का दूसरा नाम है।"

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता का उल्लेख किया गया गया हैं। इन्हीं प्रावधानों को सुनिश्चित करने के लिए ही भारतीय संविधान के भाग-3 में अनुच्छेद 12-35 के मध्य मौलिक अधिकार को समाहित किया गया है।

  मूल अधिकार जो भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है, इसके बावजूद भी इसे संविधान द्वारा परिभाषित नहीं किया गया है। हालाँकि इसमें उन आधारभूत अधिकारों का समावेश किया गया है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए नितांत आवश्यक है। वास्तव में मौलिक अधिकार वैसे अधिकार हैं जो नागरिकों के नैतिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक विकास के लिए अनिवार्य है। अर्थात या ह अधिकार मानव के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास, स्वतंत्रता और समानता के साथ-साथ भली-भांति जीवन यापन करने तथा शोषण मुक्त समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है। इस प्रकार मूल अधिकार वे अधिकार है जो व्यक्ति के जीवन के लिए मूलभूत तथा अपरिहार्य होने के कारण संविधान द्वारा नागरिकों को प्रदान किए गए हैं। सामान्यत: व्यक्ति के इन अधिकारों में राज्य के द्वारा भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि 1789 ई. में फ्रांस के शासक लुई सोलहवे को मूल अधिकार के उल्लंघन के कारण फांसी पर चढ़ा दिया गया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि मौलिक अधिकारों का उद्देश्य नागरिकों के व्यक्तित्व का विकास करना, सर्कार की शक्ति को परिसीमित करना तथा व्यक्ति के सामान्य हितों की अभिवृद्धि तथा रक्षा करने वाली सरकार की स्थापना करना है।
- मौलिक अधिकार का उद्देश्य वस्तुत: राजनितिक लोकतंत्र की भावना को प्रोत्साहित करना है। यह कार्यपालिका और विधायिका के मनमाने कानूनों पर निरोधक की तरह कम करता है। इसके उल्लंघन की स्थिति में इन्हें न्यायलय के माध्यम से लागू किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के मौलिक अधिकार का हनन हुआ है, वह सीधे उच्चतम न्यायलय जा सकता है, जो अधिकारों की रक्षा के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा व उत्प्रेषण जैसे अभिलेख या ॅतपज जारी कर सकता है। यही कारण है कि इसे सीमित सरकार या Limited Government कहा जाता है।

  हालाँकि मौलिक अधिकार कुछ सीमाओं के दायरे में आता है लेकिन ये अपरिवर्तनीय भी नहीं है। संसद इन्हें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से समाप्त कर सकती है। अनुच्छेद 20-21 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छोड़कर अधिकारों को छोड़कर राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान इन्हें भी स्थगित किया जा सकता है।

मौलिक अधिकार का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि		
क्रम सं	वर्ष	व्याख्या
1.	1215	सर्वप्रथम 1215 ई. में ब्रिटेन के तत्कालीन सम्राट जॉन द्वारा हस्ताक्षरित अधिकार पत्र (Magna carta) है। इसके द्वारा सम्राट ने ब्रिटिश नागरिकों को कुछ मुलभूत अधिकारों की सुरक्षा का आश्वासन दिया था।
2.	1689	1689 ई. में लिखित बिल ऑफ राइट्स मूल अधिकारों के सम्बन्ध में एक अन्य प्रमुख दस्तावेज है इसमें विभिन्न सम्राटों द्वारा समय-समय पर ब्रिटिश नागरिकों को प्रदत महत्वपूर्ण अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का संकलन किया है।
3.	1791	अमेरिका के मूल संविधान में मौलिक अधिकारों का उल्लेख नहीं था किन्तु 1791 ई. में 'अधिकार-पत्र' (Bill of Rights) को जोड़ा गया।

मौलिक अधिकारों से संबंधित कुछ प्रमुख तथ्य-

मौलिक अधिकारों को निम्नलिखित 8 भागों में विभाजित किया जा सकता हैं जिसे एक आरेख के माध्यम से दर्शाया जा सकता है-

1. **मूल संविधान में मौलिक अधिकारों को सात समूहों में वगीकृत किया गया था-**

(i) समता का अधिकार - (अनुच्छेद 14-18)

(ii) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

(iii) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-29)

(iv) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार - (अनुच्छेद 25-28)

(v) संस्कृति व शिक्षा संबंधी अधिकार - (अनुच्छेद 29-30) 3

(vi) संपत्ति का अधिकार - (अनुच्छेद 31)

(vii) संपत्ति का अधिकार - (अनुच्छेद 31)

भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की सरकार के दौरान 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 31(1) को मौलिक अधिकार की श्रेणी से हटाकर अनुच्छेद 300 क के रूप में संविधान के भाग 12 के अध्याय 4 में शामिल किया गया। इस संशोधन के पश्चात् निम्नलिखित परिणाम देखने को मिला जिसे एक आरेख के माध्यम से दर्शाया गया है-

44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978

यदि संघ की संसद किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने हेतु कानून बनाता है तो वह व्यक्ति अनुच्छेद 19 (1) (च) के अंतर्गत ऐसे कानून द्वारा आरोपित बंधन पर युक्ति युक्त न होने का आरोप नहीं लगा सकता ।

अनुच्छेद 31 के वंड (2) का लोप कर दिया गया है। इसी कारण किसी व्यक्ति की संपत्ति ले लिये जाने पर उसे मुआवजा (प्रतिकर) दिए जाने संबंधित मामले पर विधायिका के विरूद्ध व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं होगा ।

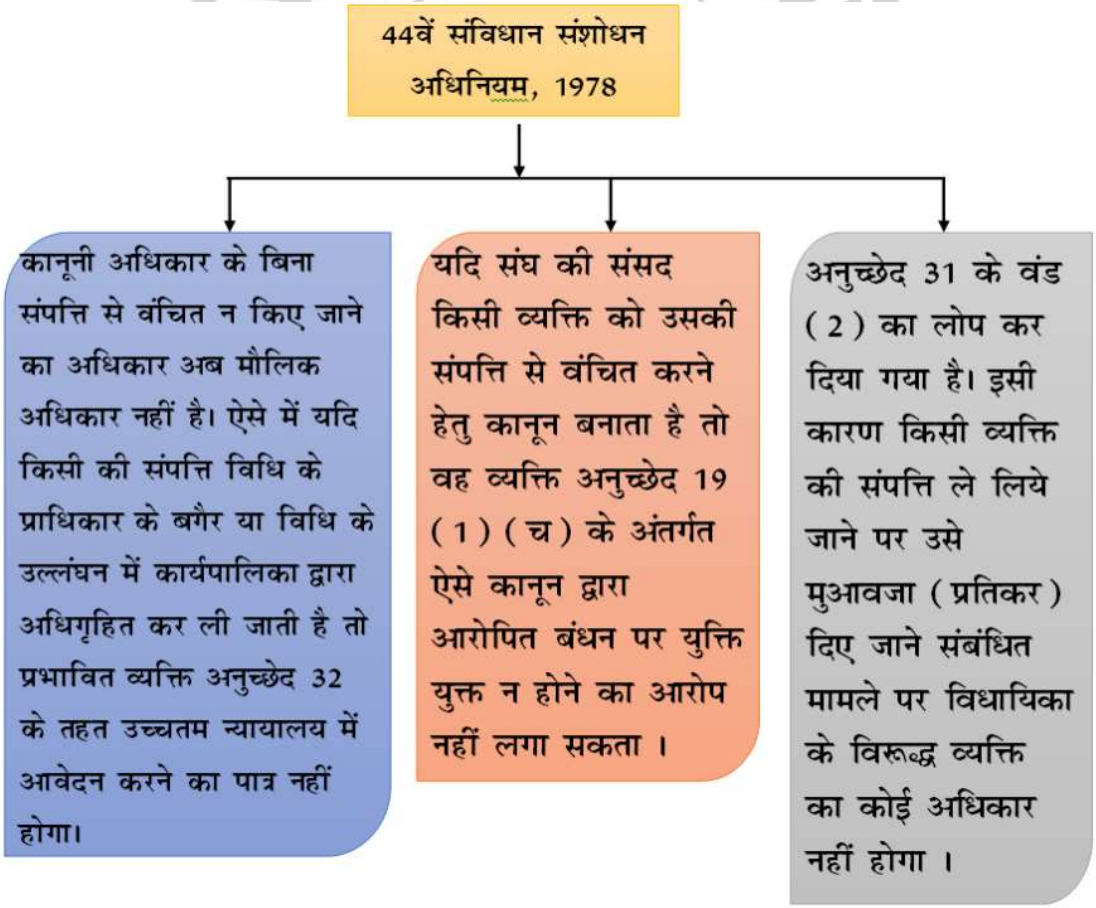

किंतु 25वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा इंदिरा गांधी ने 'प्रतिकर' शब्द की जगह 'रकम' शब्द रखा जिसकी पर्याप्तता के संबंध में न्यायालय में मामले को नहीं ले जाया जा सकता था। ऐसे में उच्चतम न्यायलय ने यह निर्धारित किया कि यदि प्रभावित व्यक्ति को दी गई रकम काल्पनिक हो या रकम इतनी कम हो कि एक प्रकार से उस संपत्ति का अधिग्रहण हो जाए तो प्रभावित व्यक्ति न्याय की गुहार कर सकता है। उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) मामले में सामने आया था। किंतु 44वें संविधान संशोधन के बाद यह संभावना मिटा दी गई।

2. वैसे मौलिक अधिकार जो सिर्फ भारतीय नागरिको प्रदत्त हैं-

- अनु० 15 - धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान आधार पर विभेद की मनाही।
- अनु० 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर समता ।
- अनु० 19 - वाक् स्वतंत्रता, संगम बनाने, निवास, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने और एक जग होने की स्वतंत्रता।
- अनु. 29-30- अल्पसंख्यकों को संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार।

3. ऐसे मौलिक अधिकार जो समान रूप से नागरिक एवं विदेशियों को प्राप्त है-

- अनु 14- विधि के समक्ष समता और विधि का समान संरक्षण।
- अनु 20- अपराधों के लिए दोष सिद्धी के संबंध संरक्षण।
- अनु 21- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार।
- अनु० 23- शोषण के विरूद्ध अधिकार।
- अनु० 25- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार ।
- अनु० 27- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए कर न देने की स्वतंत्रता ।
- अनु० 28- शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में शमिल होने की स्वतंत्रता ।

4. कुछ ऐसे मौलिक अधिकार जिनकी प्रकृति नकारात्मक है अर्थात् वे राज्य के विरूद्ध प्रतिषेध लगाते हैं-

- अनु० 15 (1)
- अनु० 16 (2)
- अनु०18 (1)
- अनु 20
- अनु० 22 (1) और
- अनु० 28 (1)

5. ऐसे मौलिक अधिकार जिनकी प्रकृति सकारात्मक है और इस कारण वे व्यक्ति को कुछ सुविधाएं प्रदान करते हैं-

- अनु० 25
- अनु० 29(1) और

- अनु० 30 (1)

6. वैसे मौलिक अधिकार जो कार्यपालिका के विरूद्ध प्राप्त हैं किंतु विधायिका पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाते–

अनु 21– इस अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुसार किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता के अधि कार से कानून या विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए विधायिका प्रक्रिया को निर्धारित कर सकती है और न्यायालय इस आधार पर उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं कि वह न्यायपूर्ण या युक्ति युक्त नहीं है। स्पष्ट है अनु० 21 विधायिका पर किसी प्रकार का प्रतिबंध आरोपित नहीं करता है बल्कि यह सिर्फ यह सुनिश्चित करता है कि कार्यपालिका विधि के अनुसार निर्धारित प्रक्रिया तथा विधि के प्राधिकार के बगैर किसी प्रकार से व्यक्ति की स्वतंत्रता का अधि ग्रहण नहीं कर सकती है। उच्चतम न्यायलय का यह निर्णय 1963 में रामनारायण बनाम दिल्ली राज्य मामले में आया था।

7. ऐसे मौलिक अधिकार जो विधायिका पर प्रतिबंध लगाते हैं–

- अनु० 15
- अनु 17
- अनु० 18
- अनु० 20 और अनु० 24

8. ऐसे मौलिक अधिकार जो राज्यों के साथ निजी व्यक्तियों के विरूद्ध भी उपलब्ध है–

- अनु० 15 (2) – सार्वजनिक समागम के स्थानों पर पहुंचने या उनके उपयोग के विषय में समानता
- अनु० 17– अस्पृश्यता की मनाही ।
- अनु० 18 (3), (4)– विदेशी उपाधियां स्वीकार करने की मनाही ।
- अनु० 23– मानव के दुर्व्यापार का प्रतिषेध।
- अनु० 24– खतरनाक उ।ोगों में बच्चों को लगाने क प्रतिषेध।

मौलिक अधिकारों की इंग्लैंड, अमेरिका और भारत के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन

- इंग्लैड का अलिखित संविधान होने के कारण यहाँ मौलिक अधिकार का कोई संहिता नहीं किया गया है। जबकि अमेरिका या भारत के लिखित संविधानों में मौलिक अधिकारों का संहिताकरण किया गया है। यही कारण है कि इंग्लैंड में व्यक्तिगत अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक है अर्थात् इंग्लैंड में व्यक्ति को अपने मन के अनुसार कोई भी कार्य (अधिकार और स्वतंत्रता) करने की आजादी है। किंतु यह स्वतंत्रता और अधिकार इंग्लैंड की सामान्य विधि के किसी नियम का उल्लंघन नहीं करने तक ही होगी। स्पष्ट है इंग्लैंड में व्यक्ति की स्वतंत्रता न्यायिक निर्णयों द्वारा सुनिश्चत की जाती है अर्थात् इंग्लैंड में भी अन्य देशों की भांति व्यक्ति के अधिकारों का संरक्षण न्यायपालिका करती है। किंतु न्यायपालिका का यह संरक्षण इंग्लैड में सिर्फ कार्यपालिका के विरूद्ध व्यक्ति को प्राप्त है अर्थात् जब विधायिका/ संसद व्यक्ति के अधिकारों का अतिक्रमण करती है तो न्यायालय प्रभावहीन हो जाता है। स्पष्ट हैं इंग्लैंड में सैद्धांतिक रूप से संसद सबसे शक्तिशाली है। इस कारण इंग्लैंड में न्यायालयों को विधायिका द्वारा पारित कानूनों के पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त नहीं है। ऐसे में इंग्लैंड में किसी भी विधि को

इस आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता कि वह किसी मूल अधिकार या नैसर्गिक अधिकार का उल्लंघन करती है। वहीं दूसरी तरफ अमेरिका के अधिकार-पत्र में शामिल प्रावधान विधायिका पर उतने ही प्रभावशाली है जितने कि कार्यपालिका पर अर्थात् अमेरिका में न्यायिक सर्वोच्चता कायम है। ऐसे में न्यायालय वहां की विधायिका अर्थात् कांग्रेस के किसी अधिनियम को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर सकती है कि उस अधिनियम के उपबंधों ने अधिकार पत्र में वर्णित व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन किया है। इसके साथ अमेरिका में आपात स्थिति बनने पर मौलिक अधिकारों को निलंबित करने की शक्ति विधायिका को न देकर न्यायपालिका को दी गई है।

- अगर हम भारत की स्थिति को देखे तो पता चलता है कि यहाँ पर मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधान कार्यपालिका और विधायिका की शक्तियों पर एक समान रूप से आरोपित मर्यादाओं और प्रतिबंधो के रूप में लागू होते हैं। हालांकि, भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की संकल्पना को अमेरिका के संविधान से लिया गया है। किंतु अमेरिका से विपरीत भारत में संसदीय संप्रभुता और न्यायिक सर्वोच्चता के मध्य एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है। ऐसे में भारत में यदि विधायिका या कार्यपालिका संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है तो वैसी स्थिति में न्यायालय विधायिका द्वारा निर्मित विधान को अंसवैधानिक घोषित कर सकता है अर्थात् भारत में विधायिका या संसद संविधान द्वारा निर्धारित मर्यादाओं और प्रतिषेधों के अधीन ही विधान या कानून बना सकती है। वास्तव में भारतीय संविधान का अनुच्छेद 13 मौलिक अधिकारों की अवहेलना से संबंधित प्रश्न के निर्धारण का अधिकार न्यायालय को सौंपता है।

  इसी संदर्भ में अनुच्छेद **13 (2)** कहता है कि राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों को छीनती है या कम करती है। ऐसे में इस खंड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य घोषित होगी।

क्या मौलिक अधिकारों में संशोधन हो सकता है ?

- संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है या नहीं, यह विवाद का विषय रहा है। 1952 ई. में शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 368 के अधीन संसद द्वारा संविधान संशोधन की शक्ति में मूल अधिकार भी शामिल है। न्यायालय ने इस निर्णय को बाद में सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य मामले में अनुमोदित किया, किंतु न्यायालय ने यह कहा कि वास्तव में यदि संविधान निर्माता मौलिक अधिकारों को संशोधन से अलग रखना चाहते तो संविधान में ऐसा स्पष्ट प्रावधान होता। ऐसे में संविधान के किसी भी भाग को न्यायालय के अनुसार सामान्य विधान द्वारा तब तक परिवर्तित नहीं किया जा सकता जब तक कि स्वयं संविधान में इसके लिए प्रावधान न किए गए हों। यह प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 4 में है। स्पष्ट है संविधान के सभी भाग अनुच्छेद 368 के तहत संशोधित किए जा सकते हैं किंतु संविधान के आधारभूत लक्षणों में संशोधन नहीं हो सकता।
- 1967 में 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' मामले के निर्णय तक उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया था कि संविधान का ऐसा कोई भाग नहीं है जिसका संशोधन नहीं किया जा सकता अर्थात् अनुच्छेद 368 की अपेक्षाओं के अनुरूप संविधान संशोधन अधिनियम पारित कर संविधान के किसी भी भाग में संशोधन हो सकता है और यह संशोधन मौलिक अधिकारों के साथ अनुच्छेद 368 में भी संभव है। यह निर्णय शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ मामले में आया था। इन सभी मामलों में न्यायालय मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में तभी तक काम कर सकते हैं जब तक वे भारत की संसद द्वारा अपेक्षित बहुमत से संशोधित नहीं किए जाते।

- किंतु गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मामले में न्यायालय ने अनुच्छेद 368 में वर्णित संशोधन प्रक्रिया के मौलिक अधिकारों के संशोधन की प्रक्रिया पर रोक लगा दी। ऐसे में उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्व के दो निर्णयों को उलटते हुए यह निर्धारित किया कि भाग–3 में शामिल मौलिक अधिकारों को संविधान ने सर्वोच्च स्थिति प्रदान की है। ऐसे में संविधान के कार्य करने वाली संसद को अनुच्छेद 368 के अधीन मौलिक अधिकारों में संशोधन की शक्ति नहीं प्राप्त है।
- किंतु संसद ने 24वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 368 का संशोधन करके यह स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 368 में वर्णित प्रक्रिया के अनुसार मौलिक अधिकारों में भी संशोधन किया जा सकता है। स्पष्ट है उच्चतम न्यायालय के गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मामले को संसद ने अध्यारोहित कर लिया।
- पुन: उच्चतम न्यायालय ने 1973 में केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य मामले में बहुमत से संसद के इन संशोधनों को विधि के अनुसार मानते हुए अपने गोलकनाथ मामले को उलट दिया और यह निर्णय दिया कि संसद अनुच्छेद 368 के तहत मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद मामले मे यह निर्णय भी दिया कि संशोधन की शक्ति की संविधान में कुछ मर्यादाएं हैं जिनके अनुसार संशोधन द्वारा संविधान के आधारभूत लक्षणों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता ।

  वर्तमान समय में न्यायालय द्वारा प्रतिपादित आधारभूत लक्षणों के इस नए सिद्धांत की बाधा को तब ही मिटाया जा सकता है जब केशवानंद मामले में 13 न्यायाधीशों की न्यायापीठ से बड़ी कोई न्यायपीठ इस मामले में दिए गए निर्णय को उलट दे।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

मौलिक अधिकार

- **अनुच्छेद 12** तथा भाग- तीन में मौलिक अधिकार से संबंधित विभिन्न उपबंधों में प्रयुक्त राज्य शब्द के अंतर्गत संघ और राज्यों की सरकार तथा विधायिका, स्थानीय प्राधिकारी (नगरपालिका, नगर निगम, स्थानीय पंचायत) तथा अन्य प्राधिकारी शामिल किए जाते हैं। यहां अन्य पदाधिकारी का तात्पर्य है- ऐसे व्यक्ति या प्राधिकारी या व्यक्तियों के निकाय, जो अपने आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का निर्माण करते हैं तथा उनका प्रभाव कानून की शक्ति रखता है। इसी अनुच्छेद के तहत निजी व्यक्ति का कार्य भी राज्य का कार्य हो सकता है, यदि उपर्युक्त प्राधिकारी में से कोई उस कानून को लागू करता है या लागू करवाने में सहायता करवाता है। उच्चतम न्यायलय ने यह प्रावधान 1959 में को चुन्नी बनाम मद्रास राज्य मामले में किया था।
- **अनुच्छेद 13**- भूतकाल और भविष्य की विधियों से मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाला उपबंध ।
- **अनुच्छेद 13 (1)** के अनुसार संविधान के प्रारंभ से पहले भारत के राज्य क्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां मूल अधिकारों के उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।
- **अनुच्छेद 13 (2)** में यह स्पष्ट किया गया है कि राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो मौलिक अधिकारों को छीनती है या कम करती है। ऐसे में यदि कोई ऐसी विधि बनाई जाती है तो वह उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।
- वास्तव में कोई विधि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है या नहीं, इसका निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन द्वारा किया जाएगा। स्पष्ट है अनुच्छेद 13 अतीत और वर्तमान की सभी विधियों को न्यायलय के न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के अंतर्गत लाता हैद्य
- **अनुच्छेद 14**- विधि के समक्ष समता और विधि का समान संरक्षण
- विधि के समक्ष समता एक नकारात्मक संकल्पना है जिसे ब्रिटेन से लिया गया है और यह वास्तव में डायसी के विधि के शासन संकल्पना पर आधारित है। विधि के समक्ष समता की संकल्पना में यह शमिल है कि किसी व्यक्ति को जन्म या मत के अनुसार कोई विशेष अधिकार नहीं होगा और सभी वर्ग समान रूप से सामान्य कानूनों के अधीन होंगे
- वहीं विधि का समान संरक्षण अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक संकल्पना है जिसे अमेरिका से लिया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि समान परिस्थितियों में एक समान व्यवहार किया जाएगा।
- उपर्युक्त उपबंधों को सर्वोच्च न्यायालय ने 1996 में डाल्मिया सीमेंट बनाम भारत संघ मामले में जगह दी है जिसके तहत यह अवधारणा राजनीतिक लोकतंत्र में सामाजिक और आर्थिक न्याय को अपनी परिधि में ले लेती है।
- वास्तव में विधि के समक्ष समता का अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति देश के कानून के ऊपर नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसका पद या प्रतिष्ठा कुछ भी हो सामान्य विधि के अनुसार उसके अधीन होगा तथा वे सभी सामान्य न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत होंगे। स्पष्ट है प्रत्येक नागरिक यदि कोई कार्य कानून विरूद्ध करता है तो उस कार्य के लिए सामान्य रूप से उत्तरदायी होगा अर्थात् इस मामले में किसी निजी (प्राइवेट) नागरिक या अधिकारी में कोई अंतर नहीं किया जाएगा।

विधि के समक्ष समता के अपवाद-

- भारतीय संविधान में विधि के समक्ष समता के संदर्भ में निम्नलिखित अपवाद रखे गए हैं-

(i) राष्ट्रपति या राज्यपाल अपनी शक्तियों के प्रयोग और कर्तव्य के पालन के लिए या उन शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करते हुए अपने द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होगा। **(अनु. 361)**

(ii) राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के विरूद्ध उसके पदावधि के दौरान किसी न्यायालय से किसी भी प्रकार की दाण्डिक कार्यवाही स्थापित नहीं की जाएगी।

(iii) राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल के रूप में अपना पद ग्रहण से पहले या उसके बाद अपनी निजी हैसियत में किए गए या किए जाने वाले किसी कार्य के संबंध में कोई सिविल कार्यवाही उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में स्थापित नहीं की जाएगी जब तक कि उनके विरूद्ध स्थापित की जाने वाली कार्यवाही की प्रकृति, कार्यवाही करने वाले का नाम, वर्णन, निवास स्थान आदि की लिखित सूचना राष्ट्रपति या राज्यपाल के कार्यालय में छोड़े जाने के बाद 2 माह का समय बीत न गया हो। **(अनु. 361)**

- हालांकि, उपर्युक्त परिस्थितियों में राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग की कार्यवाही **(अनु- 61)** को शामिल नहीं किया गया है।

(iv) विदेशों के शासक और उनके राजदूतों को उन्मुक्ति विधि का समान संरक्षण का सामान्य अर्थ है। समान लोगो में विधि समान होगी और समान रूप से लागू की जाएगी अर्थात् समान लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाएगा। उपर्युक्त उपबंध को न्यायालय ने 1952 के पश्चिम बंगाल बनाम अनवर मामले में स्पष्ट किया है। जिसके तहत विधि द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकार के संबंध में और विधि द्वारा निर्धारित दायित्वों के संबंध में समान परिस्थितियों में समान व्यवहार किया जाएगा। किंतु इसका अर्थ इस संदर्भ में नहीं लगाया जा सकता कि प्रत्येक व्यक्ति पर समान रूप से कर लगाया जाएगा। हालांकि इसका अर्थ यह है कि समान व्यक्तियों पर समान आधार पर कर लगाया जाएगा।

- वास्तव में विधि के समान संरक्षण में समान न्याय और नैसर्गिक न्याय की अवधारणा मौजूद है। ऐसे में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अंतर्गत निष्पक्षता को शामिल किया जाता है और इस

निष्पक्षता का आधार समानता होता है। उच्चतम न्यायालय ने नैसर्गिक न्याय की अवधारणा पर बल मेनका गांधी बनाम भारत संघ मामले में दिया है। नैसर्गिक न्याय की अवधारणा समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों में किसी भी प्रकार के विभेद से मना करता है, किंतु असमान परिस्थितियों या युक्ति-युक्त वर्गीकरण के आधार पर विभेद किया जा सकता है। यह विभेद करने का अधिकार विधायिका को है जिसके तहत वह लोगों के उस वर्ग की पहचान करे जिसे संरक्षण प्रदान करना है तथा इस आधार की भी पहचान करे जिसके आधार पर संरक्षण दिया जाना है। यह निर्णय डी.सी.भाटिया बनाम भारत संघ मामले

- (1995) में सामने आया । इसी आधार पर विधायिका कर लगाने, या न लगाने छूट देने या न देने, कर की दर या लाभों और रियायतों के प्रयोजन हेतु वर्गीकरण कर सकता है।

विधायिका द्वारा वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार हो सकते हैं-

(i) भौगोलिक अंतर,

(ii) समय का अंतर (बाढ़, अकाल या नवोदित राज्य के मामले में विशिष्ट वर्गीकरण प्रदान करना),

(iii) व्यापार, व्यवसाय या जीविका की प्रकृति में अंतर,

(iv) पदोन्नति के लिए उच्च शैक्षिक अनिवार्यता (यह मामला FCI बनाम ओम प्रकाश शर्मा 1998 में सामने आया था)

- इन सभी मामलों में न्यायालय सरकार के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करेगा जब तक कि सरकार का निर्णय मनमाना या द्वेषपूर्ण न हो अर्थात् सरकार की नीति न्यायिक पुनरावलोकन के अंतर्गत तब तक नहीं आएगी जब तक वह मनमाना, पक्षपातपूर्ण, अतार्किक, दुर्भावनापूर्ण सिद्ध न हो। हालांकि, अनुसूचित जाति व जनजाति के पक्ष में संरक्षणात्मक भेदभाव सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की संवैधानिक व्यवस्था का अंग है ताकि उन्हें राष्ट्रीय मुख्य धारा में जोड़ा जा सके।

अनुच्छेद 14, 15 और 16 को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए-

- दशरथ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1961) तथा देवदासन बनाम भारत संघ (1964) मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि इन अनुच्छेदों को एक साथ पढ़े जाने पर समता के सिद्धांत और विभेद के अभाव का समावेश होता है। इसे सामान्य रूप से अनुच्छेद 14 में कहा गया है। इसका प्रभाव नागरिकों तथा विदेशियों पर समान रूप से है। वहीं अनुच्छेद 15 और 16 इस समता के विशिष्ट पक्षों से संबंधित हैं।
- अनुच्छेद 15 का लाभ सिर्फ नागरिकों को मिलता है और यह किसी भी नागरिक के विरूद्ध सिर्फ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर विभेद करने की मनाही करता है। वहीं अनुच्छेद 16 भी नागरिकों तक सीमित है किंतु यह राज्य के अधीन नियोजन संबंधित मामलों में विभेद तक सीमित है। ऐसे में जो विषय अनुच्छेद 15 और 16 के अधीन नहीं आते उनमें विभेद होने पर अनुच्छेद 14 के अंतर्गत शामिल उपबंधों के अंतर्गत उनकी विधि मान्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है।
- **अनुच्छेद 15**- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद की मनाही
- **अनु० 15 (1)** के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।
- **अनु० 15 (2)** के अनुसार कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर-
- **अनु० 15 (2) (क)**- दुकानों, सार्वजनिक, भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर प्रवेश या
- **अनु०-15(2) (ख)**- पूर्णत: या अंशत: राज्य निधि पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए निर्मित कुओं, तालाबों, सड़कों, स्नानघरों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा।
- **अनु०15 (3)**- इस अनुच्छेद का कोई उपबंध महिलाओं और बालको के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगा।
- **अनु०-15(4)**- इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगा।
- **अनु० 15 (1)** - यह कहता है कि राज्य का कोई भी कार्य चाहे वह राजनैतिक सिविल या अन्य प्रकार का हो, केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर नागरिकों में कोई विभेद नहीं करेगा अर्थात् राज्य किसी धर्म या जाति के किसी व्यक्ति के साथ किसी अन्य धर्म या जातियों के व्यक्तियों की तुलना में केवल इस आधार पर पक्षपात नहीं करेगा कि वह विशेष धर्म या जाति का है। स्पष्ट है, यहां केवल शब्द का प्रयोग विभेद किए जाने वाले इस अनुच्छेद में प्रयुक्त आधारों के संदर्भ में किया गया है। ऐसे में इन आधारों के अलावा विभेद का कोई अन्य आधार होने पर विभेद अंसवैधानिक नहीं होगा। यह मामला युसुफ बनाम मुंबई राज्य वाद में सामने आया। इसी संबंध में महिलाओं को नर्स के कार्य के लिए अधिक उपयुक्त समझा जाता है जबकि भारी व खतरनाक कारखानों के लिए अनुपयुक्त स्पष्ट है यहाँ विभेद का आधार है शारीरिक व बौद्धिक।

अनु०15 (2) में वर्णित सार्वजनिक स्थानों के लिए विभेदकारी कार्यों के विरूद्ध संरक्षण प्राइवेट व्यक्तियों के विरूद्ध भी मिल सकता है। यदि प्राइवेट व्यक्तियों के स्वामित्व के कुएं, तालाब, स्नानाघाट, सड़कें और सार्वजनिक समागम के स्थान पूर्णत: या अंशत: राज्य की निधि से मदद के हों या ये साधारण जनता के प्रयोग के लिए हों।

- किंतु विभेद के उपर्युक्त प्रतिबंध राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगाद्य इसी संदर्भ में अनु-15(3) एवं अनु०-15(4) को रखा जा सकता है जिसके तहत राज्य क्रमशः महिलाओं और बच्चों के लिए तथा सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से नागरिकों के कुछ वर्ग को उन्नति के लिए या अनुसूचित जाति या जनजाति के लिए विशेष प्रावधान करने का अधिकार रखता है। अनु-15(3) के तहत ही राज्य महिलाओं और बच्चों को निःशुल्क शिक्षा तथा महिलाओं के लिए प्रसूती सुविधा का प्रावधान कर सकता है।
- **अनु० 15(4)** में किए गए प्रावधान सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के निर्धारण के संबंध में उच्चतम न्यायलय ने निर्णय दिया है कि पिछड़ा वर्ग सुनिश्चित करने के लिए व्यक्ति की जाति एक मात्र कसौटी नहीं हो सकती। चित्रलेखा बनाम मैसूर मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि हालांकि जाति किसी वर्ग के पिछड़ेपन को सुनिश्चित करने का एक प्रांसगिक कारण है। एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया। कि पिछड़ेपन के निर्धारण हेतु जाति तथा निर्धनता दोनों प्रांसगिक है, न तो जाति और न ही निर्धनता अकेले निर्धारण की कसौटी होगी। स्पष्ट है अनु-15 (4) प्रतिकारात्मक तथा संरक्षणात्मक भेदभाव की की परिकल्पना करता है किन्तु ऐसी अधिनियम, नीति युक्ति युक्त हो और अंततः लोकहित अर्थात् राष्ट्रहित से संबंद्ध हो।
- **अनु15 (5)** को 93वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा जोड़ा गया जिसमें राज्य को ऐसी विधियां बनाने के लिए सशक्त किया गया है जो सामाजिक व शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग के नागरिकों तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए विशेष उपबंध करती है। इस संशोधन के तहत मुख्य उद्देश्य इन वर्गों के शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश के लिए छूट संबंधी नियम बनाना था।

अनुच्छेद 16- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता।

- **अनु० 16 (1)** के अनुसार राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।
- **वहीं अनु-16 (2)** के अनुसार किसी नागरिक के साथ सिर्फ धर्म, मूलवंश जाति, लिंग, जन्म स्थान, निवास स्थान या इनमें से किसी के आधार पर राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में कोई विभेद नहीं किया जाएगा। स्पष्ट है यह अधिकार जाति विभेद के साथ स्थानीय विभेद तथा महिलाओं के विरूद्ध भी संरक्षण प्रदान करता है।

अनुच्छेद 16 के तहत प्राप्त समता के अपवाद-

1. संसद किसी राज्य या स्थानीय प्राधिकारी के अधीन नियोजन या नियुक्ति के किसी वर्ग के लिए शर्त क रूप में निवास का प्रावधान कर सकती है। यह अनु.16 (3) में वर्णित है।
- इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए संसद ने लोक नियोजन (निवास संबंधी अपेक्षा) अधिनिम 1957 पारित कर भारत सरकार को यह शक्ति प्रदान की थी कि वह आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और त्रिपुरा में कुछ पदों और सेवाओं में नियोजन की शर्त के रूप में निवास की शर्त रख सकती है इस अधिनियम को 1974 में समाप्त कर दिया गया जिससे अब लोक नियोजन में निवास की शर्त की आवश्यकता का उपबंध नहीं रह गया। किंतु अनुच्छेद 371 (घ) के रूप में संविधान में एक नया अनुच्छेद अतः स्थापित कर केवल आंध्र प्रदेश के लिए विशेष उपबंध किए गए हैं।

2. **अनु-16(4)** के तहत राज्य पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में विशेष प्रावधान के रूप में पदों के

- आरक्षण के लिए उपबंध कर सकता है, यदि राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न हो। स्पष्ट है ऐसे प्रावधान उन लोगों को सामाजिक, आर्थिक समानता प्रदान करने के लिए किए गए हैं।

3. **अनु०16 (5)** के अनुसार किसी धार्मिक या सांप्रदायिक संस्था के कार्य से संबंधित या सांप्रदायिक संस्था के कार्य से संबंधित कोई पद उस विशिष्ट धर्म या विशिष्ट संप्रदाय के व्यक्ति के लिए आरक्षित किया जा सकता है जिससे वह संस्था संबद्ध है।

अनुच्छेद 16 (4) को अनुच्छेद 335 के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

- **अनुच्छेद 16 (4)** के तहत राज्य सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर समाज के पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावध न कर सकता है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार अनु 16(4) सामाजिक पिछड़ेपन पर, वहीं अनुख 335 संघ या राज्यों के क्रियाकलापों से संबंधित सेवाओं के लिए नियुक्तियां करने के लिए अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सदस्यों के दावों का प्रशासन की दक्षता को बनाये रखते हुए राज्य प्रावधान करेगा। इंदिरा साहनी बना भारत संघ मामले (1992) में अनु 335 के अंतर्गत अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के पक्ष में किसी परीक्षा में अनिवार्य अंक में छूट दिए जाने या मूल्यांकन के स्तर को नीचा रखने के उपबंधो को प्रशासनिक दक्षता के साथ जोड़ा गया है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने अनु०16 (4) में उपबंधित आरक्षण की शक्ति पर किसी प्रकार की रोक नही लगाई है, किंतु अनु० 16 (4) को अनुख 335 के साथ पढ़े जाने के लिए निर्णय दिया है। इसके तहत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के संघ या राज्य के किन्हीं कार्यकलापों से संबंधित नियुक्तियों के लिए दावों पर विचार करते समय राज्य की नीति प्रशासनिक दक्षता को बनाए रखने के रूप में होनी चाहिए। अनुच्छेद 16(4)(क) व अनुच्छेद 16 (4) (ख) की वर्तमान स्थिति-
- उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार अनु 16 (4) सिर्फ सामाजिक आधार पर पिछड़ेपन की वकालत करता है, न कि

आर्थिक आधार पर इसी कारण न्यायालय ने आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को आरक्षण देने के प्रयास को अवैध घोषित कर दिया। मंडल आयोग नाम से विख्यात इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ मामले में उच्चतम न्यायालय ने अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27% आरक्षण को वैध ठहराया और यह व्यवस्था दी कि पिछड़े वर्ग में सम्पन्न वर्ग को आरक्षण का लाभ नहीं मिलना चाहिए।

- इसके साथ न्यायालय ने यह भी निर्णय दिया कि पदोन्नति के मामले में आरक्षण अवैध होगा क्योंकि यहा अवसर की समता का उल्लंघन करता है और प्रशासन की कुशलता के हित में नहीं है। ऐसे में अनुसूचित जातियों व जनव्यतियों के मामलों में पदोन्नती के मामले आरक्षण के संबंध में समस्या उत्पन्न हो गई जिसके लिए 770 संविधान संशोधन अधिनियम, 1995 द्वारा यह व्यवस्था की गई और संविधान में अनु. 16(4) (क) को अतः स्थापित किया (जोड़ा गया। इस अनुच्छेद के अनुसार अगर राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों का पर्वत प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह पदोन्नति में भी ऐसे किसी वर्ग या वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है।
- **अनु० 16 (4) (ख)** को संविधान में 81 वें संविध न संशोधन अधिनियम, 2000 द्वारा अतः स्थापित किया गया जो सेवाओं के आरक्षण के मामले में अग्रनयन के सिद्धांत को मान्यता देता है। इस सिद्धांत के अनुसार यदि किसी वर्ष आरक्षित स्थानों में से कुछ स्थान नहीं भरे जा सके तो ऐसी रिक्तियों को अगले वर्ष एक अलग श्रेणी के रूप में भरा जा सकता है और इसे 50% आरक्षण की सीमा का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।
- इंदिरा साहनी बनाम भारत संघवाद (1992) उच्चतम न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की एक पीठ ने इस मामले में निम्नलिखित बिंदुओं पर अपना निर्णय दिया है जो सरकारी नियोजन में आरक्षण से संबंधित विधि का अधिकारिक कथन और सार दोनों है-

1. यह आवश्यक नहीं है कि अनु016 (4) के अधीन उपबंध संसद या राज्य के अधीन विधान मंडल द्वारा किए जाएं। यह कार्य कार्यपालक आदेश द्वारा भी किया जा सकता है।
2. पिछड़े हुए नागरिकों के वर्ग पद की संविधान में कोई परिभाषा नहीं है। जाति, उपजीविका, निर्धनता और सामाजिक पिछड़ापन का निकट का संबंध है। भारत के संदर्भ में निचली जातियों को पिछड़ा माना जाता है। और जाति अपने आप ही पिछड़ा वर्ग हो सकती है।
3. हिंदु समाज में पिछड़े वर्ग की पहचान जाति के पर की जा सकती है। जाति के साथ उपजीविका, निर्धनता, निवास का स्थान, शिक्षा अभाव अन्य कसौटियां निर्धारक हो सकती है
4. **अनु. 16 (4)** में वर्णित पिछड़ापन मुख्यतः सामाजिक है।
5. साधन परीक्षण का अर्थ है पिछड़े वर्ग से लोगों बाहर करने के प्रयोजन हेतु की सीमा करना। न्यायालय ने आय की इस सीमा के ऊपर आप को क्रीमी लेयर (Creamy layer) क न्यायालय ने सामाजिक प्रगति की माप के लिए या संपत्ति को आधार बनाने की वकालत की।
6. कोई वर्ग तभी आरक्षण पाएगा जब वह पिछड़ा और राज्य की सेवाओं में उसका पर्याप्त प्रतिनि न हो।
7. **अनु० 16 (4)** में आरक्षण का प्रावधान 50% अधिक नहीं होना चाहिए।
8. 50% का नियम प्रत्येक वर्ष लागू होना चाहिए।
9. **अनु. 16 (4)** के अंतर्गत पदों का आरक्षण प्रारंभिक नियुक्ति तक ही सीमित है। इस नियम में लागू क पदोन्नति के मामलों में आरक्षण नहीं किया जा सकत हालांकि, 77वें संविधान संशोधन अधिनियम अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए पदोन्नति की यह हटा दी गई।
10. पिछड़े वर्गों की पहचान का न्यायिक पुनरावलोकन हो सकता है।

- **अनुच्छेद 17**- अस्पृश्यता का अंत **(Abolition of Untouchability)**
- इस अनुच्छेद के अंतर्गत अस्पृश्यता का अंत किया गया है और उसका किसी भी रूप में आचरण की है। अस्पृश्यता के आधार पर किसी भी प्रकार की निर्यात को लागू करना अपराध माना जाएगा और कानून के अनुसार वह दंडनीय होगा।
- अनु 35 के तहत संसद को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह विधि द्वारा अस्पृश्यता के अपराध के लिए दंड का निर्धारण करे। इसी संदर्भ में संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 अधिनियमित किया जिसे 1976 में संशोधित कर नागरिक अधिकार संरक्षण अधि नियम, 1955 कर दिया गया है।
- वास्तव में अस्पृश्यता की परिभाषा न ही संविधान में और न ही अधिनियम में दी गई है। ऐसे में अस्पृश्यता उस सामाजिक पद्धति के प्रति निर्देश करता है जिसमें समाज में कुछ दलित वर्गों को उनके जन्म के कारण हेय दृष्टि से देखा जाता है और तथाकथित उच्च वर्गों या जातियों के लोगों से उनेक मिलने जुलने में कुछ नियम्यताएं निर्धारित कर दी जाती है। इन्हीं तथ्यों को अधिनियम में अपराध माना गया है और उनके लिए दंड का विधान किया गया है। **दंड के आधार निम्नलिखित हो सकते हैं**-

1. किसी व्यक्ति को किसी सामाजिक संस्था में, जैसे- किसी शिक्षण संस्थान, अस्पताल आदि में प्रवेश न देना।
2. किसी व्यक्ति सार्वजनिक उपासना के किसी स्थल में उपासना या प्रार्थना करने से रोकना ।

3. किसी दुकान, होटल, सार्वजनिक मनोरंजन के किसी स्थान पर पहुंचने से रोकना।
4. सार्वजनिक रूप में सेवाएं प्रदान करने वाले किसी नल या जल के किसी अन्य स्रोत, मार्ग आदि के संबंध में कोई निर्योग्यता लागू करना ।

➢ 1955 अधिनियम के इन प्रावधानों में वर्ष 1976 में निम्नलिखित उपबंध जोड़ दिए गए-

(i) अनुसूचित जाति के किसी सदस्य का अस्पृश्यता के आधार पर अपमान करना

(ii) अस्पृश्यता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपदेश देना।

(iii) इतिहास, दर्शन, धर्म या जाति व्यवस्था की परंपरा के आधार पर अस्पृश्यता को उचित ठहराना।

➢ उपर्युक्त उपबंधों में से किसी एक के आधार पर भी अस्पृश्यता किए जाने की स्थिति में 1-2 वर्ष तक के कारावास का प्रावधान तथा दोष सिद्ध व्यक्ति संघ या राज्य विधायिका के लिए निर्वाचन हेतु आयोग्य घोषित किए जाने का प्रावधान है। ऐसे मामलों में यदि अनुसूचित जाति का कोई सदस्य किसी विभेद का शिकार होता है तो न्यायालय यह मानेगा कि ऐसा कार्य अस्पृश्यता के आधार पर किया गया है जब तक कि यह गलत सिद्ध न हो जाए। अनुच्छेद 18- उपाधियों का अंत सामाजिक समानता को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अनु० 18 के तहत राज्य को किसी भी व्यक्ति को (भारतीय या विदेशी), सेना या विद्या संबंधी उपाधि के अलावा अन्य कोई उपाधियों प्रदान करने हेतु प्रतिषेध किया गया है।

➢ **अनुच्छेद 18 (2)** के तहत भारत के नागरिकों को भी किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि को स्वीकारने का प्रतिषेध किया है।

➢ अनुच्छेद 18 (3) के अनुसार राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से राष्ट्रपति की सहमति के बगैर कोई भी उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता है।

➢ वर्ष 1954 में भारत सरकार ने भारत रत्न, पद्म विभूषण, पद्म भूषण और पद्मश्री नाम से चार प्रकार के सम्मान प्रारंभ किए जिनमें भारत रत्न कला, साहित्य और विज्ञान की उन्नति में किए गए असाधारण सेवाओं के लिए और उच्च कोटी की लोक सेवाओं की मान्यता के रूप में दिया जाता है।

➢ वास्तव में ये उपाधियां अलंकरण मात्र भी और इसका आशय यह नहीं था कि जिन व्यक्तियों को ये प्रदान की जाती है वे इनका उपयोग अपने नाम के आगे करेंगे। इसी संदर्भ में आचार्य जे. बी. कृपलानी ने इन अंलकरणों के विरूद्ध आवाज उठाई थी जिसके बाद 1977 में जनता सरकार ने इन्हें प्रदान करना बंद कर दिया। किंतु 1980 में इंदिरा गांधी की वापसी पर इस प्रथा को पुन: प्रारंभ कर दिया गया जिससे यह विषय अभी भी उच्चतम न्यायालय में विचाराधीन है।

अनुच्छेद 19 स्वतंत्रता का अधिकार

➢ भारतीय संविधान में कुछ सकारात्मक अधिकारों का झुक भी प्रावधान है ताकि संविधान की उद्देशिका या प्रस्तावना में घोषित स्वतंत्रता के आदर्श की प्राप्ति संभव हो सके। व्य स्पष्ट है मूल संविधान में अनु 19 (1) के तहत 7 स्वतंत्रताएं शामिल थी किंतु 44वें संविधान संशोधन अधि नियम, 1978 द्वारा श्संपत्ति के अर्जन धारण और व्यय का सा श्अधिकारश को मौलिक अधिकार की श्रेणी से हटा दिया गया। ऐसे में अनु० 19(1) के तहत निम्नलिखित 6 स्वतंत्रताएं शेष हैं-

- ❖ अनु० 19 (1) सभी नागरिकों को
- ❖ अनु 19 (1) के विभिन्न उपखंडों के तहत
- ❖ अनु. 19 (1) (क) - वाक् स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की नि स्वतंत्रता
- ❖ अनु० 19 (1) (ख)- शांतिपूर्वक और निरायुध (बिना सु शस्त्र) सम्मेलन की स्वतंत्रता
- ❖ अनु० 19(1)(ग)- समुदाय या संघ बनाने की स्वतंत्रता अनु० 19 (1) (घ) भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता
- ❖ अनुङ्क 19(1)(ड़)- भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग सि में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता
- ❖ अनु० 19 (1)(च) निरसित (संपत्ति का अधिकार)

➢ अनु० 19 (1) (छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। कोई भी आधुनिक राज्य व्यक्ति के अधिकारों को आत्यांतिक रूप में प्रदान नहीं करता है, बल्कि संविधान में ही इन अधिकारों में से प्रत्येक पर कुछ परिसीमाएं निर्धारित की जाती है। भारतीय संविधान ने राज्य को यह शक्ति प्रदान की है कि वह समुदाय के व्यापक हितों की दृष्टि से युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सकता है। स्पष्ट है भारतीय संविधान का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। अत: जहां सामूहिक हितों का प्रश्न शामिल होगा,

➢ वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामान्य हितों के सामने झुकना होगा। भारतीय संविधान ने इसके निर्धारण की 7 जवाबदेही न्यायालय पर नहीं छोड़ी है, बल्कि संविधान में 1 व्यवस्था प्रदान की है। इसी संदर्भ में 1950 के गोपालन 7 बनाम मद्रास राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह ध अधिनिर्धारित किया है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और का सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन भारत का संविधान या स्थापित करता है।

अनुच्छेद 19(1) (क) और उसकी परिसीमाएं-

➢ भारतीय संविधान का यह अनुच्छेद वाक् स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार देता है किंतु इस स्वतंत्रता पर राज्य द्वारा विभिन्न आधारों पर युक्ति-युक्त निर्बन्धन लगाया जा सकता

है। ये विभिन्न आधार न्यायालय की अवमाना, मानहानि, शिष्टाचार या सदाचार, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, अपराध के लिए उकसाना, लोक व्यवस्था और भारत की प्रभुता और अखंडता हो सकते हैं। निर्बन्धन के आधार के रूप में भारत की प्रभुता और अखंडता को 16वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1963 द्वारा जोड़ा गया ।

- निर्बन्धन के आधार के रूप में शिष्टाचार या नैतिकता सिर्फ लैंगिक नैतिकता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह व्यवहार या औचित्य के प्रचलित मानकों के अनुरूप होने की मांग करता है। इसी कारण किसी धर्म निरपेक्ष राज्य धर्म के आधार पर किसी अभ्यर्थी द्वारा निर्वाचन हेतु मत मांगना समाज के शिष्टाचार और औचित्य के नियमों के विरूद्ध माना जाता है।
- स्पष्ट है वाक् स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत व्यक्ति अपने भाषण के अधिकार का प्रयोग इस प्रकार नहीं करेगा कि उससे किसी अन्य व्यक्ति के अधि कारों का अतिक्रमण हो। इस अधिकार पर निर्बन्धन हेतु अनुच्छेद 19(2) में उपबंध किए गए हैं जिसके तहत प्रत्येक नागरिक को दूसरे नागरिक के वाक् और अभिव्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करते हुए अपने इस अधिकार का प्रयोग करना हैद्य
- **प्रेस की स्वतंत्रता - अनु० 19 (1) (क)** के तहत नागरिकों को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का अधिकार प्राप्त है। हालांकि, इसमें प्रेस की स्वतंत्रता व इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की स्वतंत्रता का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किंतु उच्चतम न्यायालय ने भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता को लोकतंत्र का मूल आधार माना है। न्यायालय के अनुसार प्रत्येक नागरिक को अपनी भावनाओं को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता हैं। इसी आधार पर उच्चतम न्यायालय ने समाचार पत्रों पर लगाए गए सेंसरशिप को अवैध बताया। उच्चतम न्यायालय ने इसी संदर्भ में समाचार पत्रों और प्रेस की स्वतंत्रता को लोकतंत्र में सभी स्वतंत्रताओं की जननी माना है। इमैनुअल बनाम करेल राज्य-
- उच्चतम न्यायालय के अनुसार वाक् स्वतंत्रता में चुप ख रहने का अधिकार भी शामिल है। इसी आधार पर उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी व्यक्ति को राष्ट्रगान गाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यदि इससे उसके बोलने की स्वतंत्रता के अधिकार अनुच्छेद 25 के तहत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन होता है। **Peoples Union for Civil Liberties Versus Union of India-**
- इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने किसी नागरिक के टेलिफोन टेप किए जाने को उसको बाकू और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उल्लंघन माना है।
- **अनुच्छेद 19 (1) (ख) की परिसीमाएँ** - इस अनुच्छेद के तहत नागरिकों को सभा या सम्मेलन का अधिकार है किंतु नागरिक अपने इस अधिकार का प्रयोग सार्वजनिक अव्यवस्था फैलाने के लिए, शांति भंग करने के लिए, भारत की प्रभुता या अखंडता पर प्रतिकूल असर डालने के लिए नहीं किया जाएगा। संविधान में अनुच्छेद 19(3) के तहत राज्य कानून बनाकर संप्रभुता (Sovergnity) और अखंडता (Integrity) तथा लोक व्यवस्था के हित में सम्मेलन की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकता है। अनुच्छेद 19(1)(ग) की परिसीमाएँ इस अनुच्छेद के तहत राज्य सभी नागरिकों को प्रदत्त समुदाय बनाने के अधिकार की परिसीमाएँ अनुच्छेद 19 (4) के तहत करता है।
- **अनु० 19 (4)** के तहत ही राज्य संप्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हित में नागरिकों की इस स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगा सकता है। वास्तव में अनु० 19 (1) (ग) के तहत नागरिकों को हड़ताल करने या बंद करने का अधिकार प्राप्त नहीं है इसे उच्चतम न्यायालय ने CPI (M) बनाम भरत कुमार मामले में निर्धारित किया है जिसके तहत न्यायालय ने हड़ताल को नागरिकों की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार में हस्तक्षेप माना है।
- **अनुच्छेद 19 (1) (घ) की परिसीमाएँ** - भारतीय संविधान ने इस अनुच्छेद के तहत प्रत्येक नागरिक को भारत के राज्य क्षेत्र में निर्बंध संचरण करने और देश के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार प्रदान करता है। किंतु यह अधिकार ऐसे कुछ निर्बंधनों के अधीन है जो राज्य, साधारण जनता या अनुसूचित जनजाति के हित में लगाए जाएं।
- **अनुच्छेद 19 (1) (छ) की परिसीमाएँ** - इस अनुच्छेद के तहत प्रत्येक नागरिक का कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार है। किंतु यह अधिकार भी युक्तियुक्त निबंधन के अन होगा। न्यायालय के निर्णयों के अनुसार अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनको संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाजों को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है। इसके साथ अनु० 19(6) के अनुसार जनहित के लिए किसी भी वृत्ति, उपजीविका पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। साथ ही राज्य इन प्रयोजनों के लिए आवश्यक निर्योग्यताएं निर्धारित कर सकता है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार व्यापार या कारोबार के अधिकार में उसे बंद करने का अधिकार भी शामिल है। कसी भी नागरिक को उसकी इच्छा के विरुद्ध व्यापार या कारोबार करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। साथ ही नशीली दवाओं मिलावटी खाद्य पदार्थ, महिलाओं और बच्चों के अवैध व्यापार शराब के व्यवसाय आदि को मूल अधिकार में शामिल नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 20 अपराधों के लिए दोष सिद्धी के संबंध में संरक्षण-
- अनु 20(1) के अनुसार किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दोषी नहीं ठहराया जाएगा जब कि उसने ऐसा कोई कार्य न किया हो, जो कार्य करने के समय अपराध के रूप में घोषित हो या उसे उस अपराध के लिए उससे अधिक दंड नहीं दिया जा सकता, जो अपराध किए जाने के समय उस अपराध के लिए घोषित हो।

- वास्तव में संविधान का यह अनुच्छेद भारत में विधायिकाओं की विधि निर्माण की शक्ति पर मर्यादाओं को आरोपित करता है क्योंकि सामान्यत: विधायिका घटना के बाद और घटना के पूर्व भूतलक्षी एवं भविष्य लक्षी दोनों प्रकार के विधानों का निर्माण कर सकती है। इस मर्यादा के लगाए जाने से विधयिका किसी दंडनीय विधि को भूतलक्षी प्रभाव बनाकर यह उपबंध नहीं कर सकेगी कि कोई व्यक्ति ऐसे कार्य के लिए दोषसिद्ध किया जाए जो कार्य करने के समय अपराध की श्रेणी में नहीं था। इसके साथ नहीं विधायिका किसी विधान को भूतलक्षी प्रभाव देकर पहले से निर्धारित संबंधित अपराध के लिए दंड से अधिक दंड का प्रावधान करे।
- अनु 20 (2) दोहरे अभियोजन और दंड से उन्मुक्ति प्रदान करता है अर्थात् किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित या दोषी और दडित नहीं किया जा सकता। दोहरे दंड (Double jeopardy) की संकल्पना अमेरिकी संविधान में शामिल है। उच्चतम न्यायालय ने 1954 में वेंकटरामन बनाम भारत संघ मामले में यह निर्धारित किया है कि अनु. 22 का निर्देश न्यायिक दंड के प्रति है जो व्यक्ति को इस बात की उन्मुक्ति देता है कि कोई व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार नही अभियोजित और न ही दंडित किया जा सकता अर्थात् यदि कोई व्यक्ति अपराध के लिए पूर्व में अभियोजित और दंडित किया जा चुका है तो उसे उसी अपराध के लिए बाद की कार्यवाही में अभियोजित और दंडित नहीं किया जा सकता। ऐसे में यदि कोई विधि ऐसे दोहरे दंड की व्यवस्था करती है तो संबंधित विधि शून्य घोषित होगी।
- हालांकि, यह अनुच्छेद न्यायालय या न्यायिक अधिकरण के मामलों में ही दोहरे अभियोजन या दंड उन्मुक्ति का प्रावधान करता है अर्थात् यदि किसी सरकारी कर्मचारी की न्यायालय के द्वारा किसी सरकारी कर्मचारी को न्यायालय के द्वारा किसी अपराध के लिए दंडित किया गया है तो उसके विरूद्ध उसी अपराध के लिए विभागीय कार्यवाहियों की जा सकती है या विभागीय कार्यवाही में दंड देने के बाद न्यायिक कार्यवाही की जा सकती है। यह निर्णय उच्चतम न्यायालय ने वेंकटरामन बनाम भारत संघ मामले में दिया है।
- अनु- 20(3) के अनुसार किसी अपराध के लिए अभियुक्त (आरोपी) किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। किंतु यह वहा लागू नहीं होगा जब तलाशी लेने पर अभियुक्त से कोई वस्तु या दस्तावेज प्राप्त हो जाए। किंतु यह उन्मुक्ति अभियुक्त की चिकित्सीय परीक्षण और अभियुक्त के अंगूठे की प या नमूने के हस्ताक्षर लेने के मामले में प्रदत्त नहीं है।
- 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 रा संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि अनु- 359 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा किए जाने पर अनु 20 को निमित नहीं किया जा सकता।

❖❖❖

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR